अध्याय-2

अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण एवं स्थानिक संगठन

(Classification of Economies and Spatial Organisation)

अर्थव्यवस्था की संकल्पना (Concept of Economy)

अर्थव्यवस्था (Economy), आर्थिक एवं अर्थ प्रणाली (Economic System) एवं आर्थिक संगठन (Economic Organisation) शब्द बहुधा एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किसी एक विशिष्ट वातावरण में मनुष्य किस प्रकार अपने यन्त्रों, विधियों तथा क्रियाकलापों का प्रयोग तथा वहाँ के संसाधनों का उपभोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करते हैं, वह उनकी अर्थव्यवस्था या अर्थतन्त्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में आर्थिकतन्त्र मूल रूप से एक संगठनात्मक संरचना है जिसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के उपयोग पर सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सीमित साधनों का वैकल्पिक उपयोग करते हुये कुशलतापूर्वक वितरण किया जाता है।

मनुष्य अपनी आधारभूत आवश्यकताओं, भोजन, आवास एवं वस्त्र आदि के लिये मानवीय विकास लंबे काल से क्रियाशील रहा है। अत: मानव अपने ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी उपलब्धियों और कल्पना शक्ति के बल पर भौतिक परिवेश से समायोजन कर अर्थतन्त्रीय भू-दृश्य की रचना करता है। मानव की अर्थव्यवस्था सम्मिलित एवं वातावरण के मिश्रित तत्त्वों जैसे स्थिति, जलवायु, मिट्टी, वनस्पति, जल संसाधन आदि का प्रत्यक्ष फल है। जिस प्रकार वातावरण या पर्यावरण में भिन्नता पायी जाती है उसी प्रकार मानव की अर्थव्यवस्था में भी विभिन्नता लक्षित होती है। **मेकार्टी एवं लिंडबर्ग** (McCarty and Lindberg) ने 1966 में "A page perface of Economic Geography" पुस्तक में अर्थ तन्त्र या अर्थव्यवस्था को इस प्रकार परिभाषित किया है-

"अर्थव्यवस्था को सरल रूप में एक उत्पादन व्यवस्था से परिभाषित किया जा सकता है जिसका प्रमुख लक्ष्य एक प्रकार का उत्पादन करना है। परन्तु इस प्रक्रिया (Process) में उस उत्पादन क्षेत्र में अपरिचत सभी उत्पादन क्रियाएँ, जो इस प्रकार के लिये आवश्यक हैं, उन्हें भी सम्मिलित किया जाता है।"

इसी प्रकार **लाउक्स** व **व्हिटनी** (Loucks and Whithny) ने भी 1969 में अपनी पुस्तक "Comparative System, में अर्थव्यवस्था की परिभाषा इस प्रकार दी है-

"एक आर्थिक प्रणाली में एक देशवासियों अथवा राष्ट्र के वे सब उपाय शामिल होते हैं जो मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये इनके साधनों के उपयोग के सम्बन्ध में काम करते हैं। ये उपाय मुख्यतया उस राष्ट्र के कानून-कायदों में प्रकट होते हैं, लेकिन सहायक रूप में, ये वहाँ के निवासियों की प्रथाओं, आदतों व आचार-विचार सम्बन्धी नियमों में भी पाये जाते हैं जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये साधनों का उपयोग करते समय काम आते हैं।"

इस प्रकार अर्थव्यवस्था का स्वरूप बहुत व्यापक है। **बी. डब्लू. होडर** एवं **आर. ली** ने 1974 में अपने "आर्थिक भूगोल" नामक ग्रन्थ में अर्थतन्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा कि "अर्थतन्त्र शब्द से तात्पर्य आर्थिक निर्णायकों के जाल से है।"

"The term "Economy" refers to network of economic dicision makers."

अर्थात् अर्थव्यवस्था में अनेक निर्णायक विभिन्न प्रकार के आर्थिक निर्णय करते हैं और उससे जो तन्त्र विकसित होता है वह अर्थतन्त्र या अर्थव्यवस्था कहलाती है।

अर्थव्यवस्था किसी भी स्तर की हो सकती है। विषम भौतिक परिवेशों में मानव आदिम जीवन से आगे बढ़ने से कदम-कदम पर कठिनाइयों से जूझता रहा है और वर्तमान में भी वहाँ का अर्थतन्त्र आदिम रूप में विद्यमान है जैसे टुण्ड्रा का एस्किमो या अफ्रीका की आदिवासी जातियाँ।

अर्थव्यवस्था का साधारण मॉडल या प्रतिदर्श (A Simple Model of Economy)

आर्थिक भूगोल में अर्थव्यवस्था की जटिलताओं को समझने हेतु उसका सरल मॉडल अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, जिसके आधार पर आर्थिक जगत को समझने एवं उससे सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करना उपयुक्त है। अर्थव्यवस्था के साधारण मॉडल में अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों (तत्त्वों) के रूप में उपभोक्ता, फर्म, उत्पादनकर्ता, संसाधनों के स्वामी एवं सरकार होती है। ये सभी विभिन्न दशाओं में निर्णय लेने का कार्य करते हैं। इनके द्वारा लिये गये विभिन्न निर्णय परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं क्योंकि सभी तत्त्व अन्तर्सम्बंधित होते हैं।

इस अन्तर्सम्बन्ध को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) आन्तरिक सम्बद्धता (Internal Linkage) (ii) बाह्य सम्बद्धता (External Linkage)

(i) आन्तरिक सम्बद्धता (Internal Linkage)

इसे पारस्परिक सम्बद्धता भी कहा जाता है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न तत्त्वों या तत्त्वों के समूह चित्र संख्या 2.1 में उपभोक्ता व उत्पादकों के बीच यह पारस्परिक सम्बन्ध माल या सेवा के बाजार के रूप में व्यक्त होता है। यदि उपभोक्ता माल अथवा सेवा के लिये मांग उत्पन्न करता है तो उत्पादक इकाइयाँ इस मांग की पूर्ति हेतु माल का उत्पादन करती हैं। इस प्रकार उत्पादक व उपभोक्ताओं के बीच परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है।

उत्पादक उत्पादन हेतु संसाधनों के मालिकों के सामने भूमि, श्रम, पूँजी प्राप्त करने की मांग करते हैं। तब संसाधनों के मालिक इस मांग की पूर्ति के लिये भुगतान के प्रस्ताव को आंकते हैं। लेकिन विश्व की नदी घाटियों में प्रकृति की अनुकूलता के कारण कृषि, पशुपालन व व्यापार को बढ़ावा मिला जिसके कारण ऐसे क्षेत्रों में अर्थतन्त्र का विकसित स्वरूप दिखाई देता है। इस प्रकार वातावरण की भिन्नता के कारण विभिन्न क्षेत्रों की अर्थव्यवस्थाओं में भी विभिन्नता पायी जाती है।

इसी प्रकार अर्थव्यवस्था का स्तर ग्रामीण अर्थव्यवस्था से लेकर विश्व अर्थव्यवस्था का हो सकता है। ए. जे. ब्राउन के अनुसार जिस प्रकार जीवित प्राणियों में भोजन करने, भोजन को पचाने व बढ़ने की प्रक्रिया पायी जाती है, उसी प्रकार अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उपभोग, विनियोग व (पुन:) विकास की मुख्य प्रक्रियायें (Vital processes) पायी जाती है। एक अर्थव्यवस्था के मुख्य लक्षणों अथवा आवश्यक तत्त्वों में मौद्रिक प्रणाली, आर्थिक क्रिया के स्तर में परिवर्तनों एवं विकास मुख्य है और उनसे सन्तुष्टि की स्थिति में कुछ संसाधनों को बेचते हैं और उत्पादन इकाई (Firm) इन्हें खरीदकर उत्पादन का कार्य प्रारम्भ करती हैं। इस प्रकार यहाँ पुन: उत्पादकों (Producers) एवं संसाधनों के स्वामियों जिन्हें चित्र सं. 2.1 में क्रमश: E2 व E3 के द्वारा दर्शाया गया है, के मध्य का सम्बन्ध उत्पादन के कारकों के बाजार के रूप में उत्पन्न होता है। साथ ही उपभोक्ताओं व संसाधनों के मालिकों के बीच भी परोक्ष सम्बन्ध स्थापित होता है जिसे चित्र में क्रमश: E1 व E3 के द्वारा दर्शाया गया है। अर्थव्यवस्था में एक उपभोक्ता संसाधनों का स्वामी एवं उपभोक्ता दोनों हो सकता है। उसी प्रकार एक फर्म उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों हो सकता है। संसाधनों के स्वामी भी उपभोक्ता व संसाधनों के मालिक दोनों होते हैं। फर्म उपभोक्ताओं व संसाधनों के स्वामियों के साथ-साथ संचार के जाल में वस्तुओं व सेवा के बाजार द्वारा उत्पादक के कारकों को बाजार से भी अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।

इस प्रकार के अन्तर्सम्बन्धों में प्रत्येक तत्त्व पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। संसाधनों के स्वामी को फर्म से प्राप्त आय से पुन: माल या सेवा की मांग करती है व संसाधन स्वामी अपनी मांग की पूर्ति करते हैं। स्पष्ट है कि फर्म या उत्पादक, उपभोक्ता (Consumer) व संसाधन स्वामी में परस्पर गहन सम्बन्ध पाया जाता है लेकिन इन तीनों को ही प्राथमिकता अधिकतम लाभ या सन्तुष्टि की है। लेकिन यह दशा मानवीय कल्याण या आर्थिक समानता की दृष्टि से उचित नहीं है। इसका विकल्प एक निर्णय लेने वाली केन्द्रीय संस्था सरकार द्वारा हो सकता है जिसे चित्र 2.1 में E4 द्वारा अन्य तत्त्वों उत्पादक, उपभोक्ता व संसाधनों के स्वामियों के मध्य दर्शाया गया है। इस केन्द्रीय संस्था या सरकार द्वारा लिये गये निर्णय विलोम होते हैं ताकि सामाजिक-आर्थिक समानता व पारिस्थितिक सन्तुलन की स्थापना हो सके। अर्थव्यवस्थाएँ कई प्रकार की होती हैं।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सभी निर्णय पूँजीपति के हाथ में होते हैं। वे अधिकतम लाभ को ध्यान में रखते हैं जबकि साम्यवादी अर्थव्यवस्था व समाजवादी अर्थव्यवस्था में सभी निर्णय केन्द्रीकृत सरकार करती है। यहाँ सरकार का लक्ष्य जनता का अधिकतम कल्याण होता है। वर्तमान में विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्था पायी जाती है।

कहीं-कहीं इन दोनों अर्थव्यवस्थाओं का मिश्रित रूप अर्थात् मिश्रित अर्थव्यवस्था भी पायी जाती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था का सर्वोत्तम उदाहरण भारत का दिया जा सकता है। पूँजीवादी व साम्यवादी दोनों अर्थव्यवस्थाएँ परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, एवं साम्यवादी अर्थव्यवस्था रूस, चीन आदि में पायी जाती है। पूँजीवादी व साम्यवादी अर्थव्यवस्था परस्पर अन्तर्सम्बन्धित है। इसी कारण वर्तमान में अधिकांश देशों का झुकाव मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरफ है।

अर्थव्यवस्था के सामान्य या सरलीकृत प्रतिरूप में अर्थव्यवस्था के विभिन्न तत्त्वों जैसे उपभोक्ता, उत्पादक या फर्म, संसाधन मालिक एवं सरकार में पाये जाने वाले अन्तर्सम्बन्ध को निम्नांकित चित्र में दर्शाया गया है-

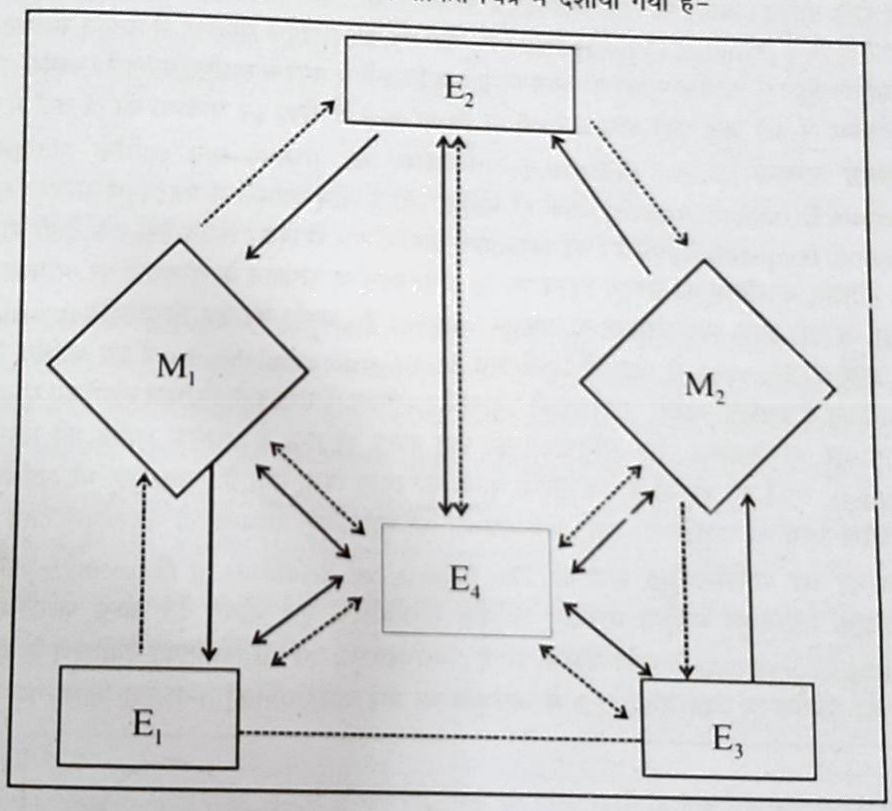

चित्र-2.1 : एक सरलीकृत अर्थव्यवस्था का मॉडल (After Lee & Hodder)

यहाँ ⟶ सूचना एवं धन प्रवाह (Information & Money flow)

⟶ पदार्थ प्रवाह (Material flow)

M_1 → वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए बाजार (The Market for goods & Services)

M_2 → उत्पादन के कारकों के लिए बाजार (The market for factors of productions)

E_1 → उपभोक्ता (Consumers)

E_2 → फर्म, उत्पादक एवं प्रक्रिया (Firms, Producers Processors)

E_3 → संसाधनों के मालिक (Resource Owners)

E_4 → सरकार, केन्द्रीय निर्णयकर्ता निकाय (Government, Central Decision Making Body)

(ii) अर्थव्यवस्था के पर्यावरणीय या बाह्य सम्बद्धता

(The Environmental Relations of the Economy or External Relationship)

अर्थव्यवस्था के पर्यावरणीय सम्बन्धों पर फार्मर्स (1957), होडर (1973), चिशोल्स (1971), रिचर्डशन (1971), हार्वे (1973), मार्गन (1971) के अध्ययन महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

अर्थव्यवस्था का अपना पृथक् से कोई अस्तित्व नहीं है। यह भी पर्यावरण का एक हिस्सा है तथा अर्थतन्त्र का पर्यावरण से अन्तर्सम्बन्ध है। क्योंकि अर्थतन्त्र की गतिशीलता के लिए आवश्यक ऊर्जा की प्राप्ति पर्यावरण से ही होती है जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था का अस्तित्व बना रहता है। अर्थव्यवस्था का पर्यावरण से लागत तत्त्व या इनपुट प्राप्त होते हैं एवं अर्थव्यवस्था किसी न किसी प्रकार का उत्पादन पर्यावरण को उपलब्ध कराता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था एवं पर्यावरण के बीच एक चक्रीय व्यवस्था बनी रहती है। विश्व या किसी देश की अर्थव्यवस्था में पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों एवं इन पर्यावरणीय परिवर्तनों के साथ अनुकूलन स्थापित करने का गुण होना चाहिए। किसी भी अर्थव्यवस्था एवं पर्यावरण के परस्पर सम्बन्धों में काफी जटिलता पायी जाती है। यह जटिलता ही वह अभिसरण बिन्दु (Point of Convergence) है, जहाँ इन जटिलतापूर्ण सम्बन्धों से उत्पन्न समस्याओं को पहचानने, विश्लेषित करने एवं समाधान ढूँढ़ने में आर्थिक भूगोल का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध स्थापित करता है। फार्मर्स (Farmer's 1957) ने पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था में पाये जाने वाले बाह्य सम्बन्धों पर विचार करने के लिए इन सम्बन्धों को दो वर्गों में विभाजित किया-

(अ) ***सामाजिक सम्बन्ध*** *(Social Relations)*-अर्थव्यवस्था का अध्ययन मात्र आर्थिक गतिविधियों की उत्पत्ति (Generator Economic Activity) तक ही सीमित नहीं है वरन् वर्तमान में महत्त्वपूर्ण समस्या आर्थिक असमानता (Economic Inequalities) की है। यह असमानता ग्रामीण स्तर से लेकर विश्व स्तर तक देखी जा सकती है। विश्व की 25 प्रतिशत जनसंख्या का सम्पूर्ण विश्व का 75.1 उत्पादन या उत्पादन के संसाधनों पर अधिकार है जबकि 75% जनसंख्या के पास 25% भाग संसाधन या उत्पादन (output) है। अर्थात् यह एक विचारणीय (considerable) समस्या है। **डी. हार्वे** (D.Harvey) ने 1973 में अपने ग्रन्थ Social justice and the city में इस आर्थिक विषमता का प्रमुख कारण वर्तमान में प्रचलित बाजार व्यवस्था को बताया है। वर्तमान में समाज के विभिन्न लोगों का मुख्य लक्ष्य अधिकतम लाभ प्राप्त कर अधिकाधिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करना हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा पूँजीपति (Capitalist) बनने की हो गई है एवं नैतिक मूल्यों को त्याग दिया गया है। अत: यह भी आर्थिक भूगोल का एक प्रमुख कारण माना जा सकता है। अत: अर्थव्यवस्था का सामाजिक सम्बन्ध भी महत्त्वपूर्ण होता है।

(आ) ***अर्थव्यवस्था का पारिस्थितिक सम्बन्ध*** *(The Ecological Relations of Economy)*-आर्थिक विषमता की भाँति ही एक महत्त्वपूर्ण समस्या मानवीय आर्थिक गतिविधियों एवं जीवन देने वाली पारिस्थितिकी तन्त्र (Life supporting Ecosystem) के मध्य संतुलन की है। अर्थव्यवस्था एवं पारिस्थितिकी पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों का स्पष्टीकरण चित्र संख्या 2.2 में अर्थव्यवस्था एवं पारिस्थितिकी तन्त्र द्वारा किया गया है-

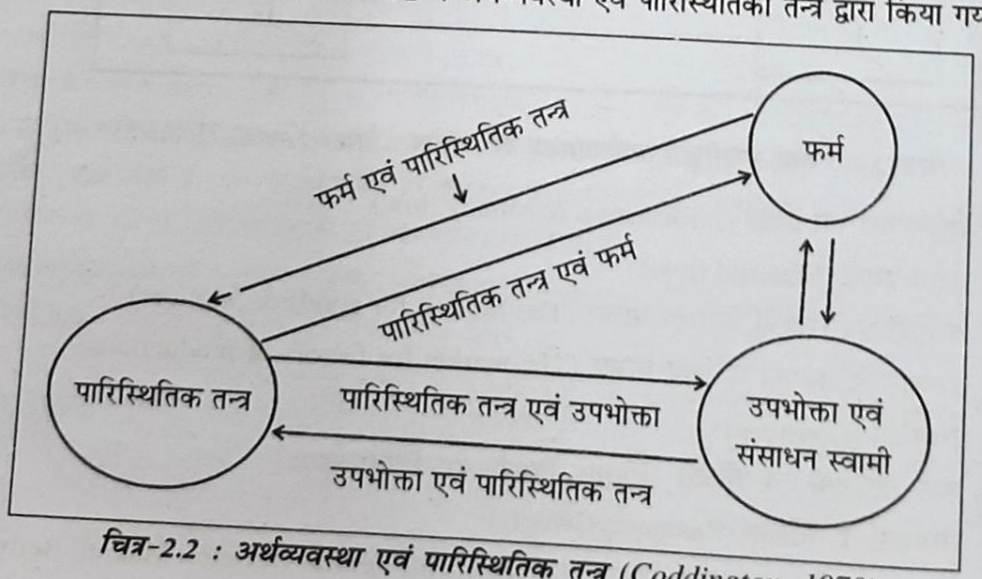

चित्र-2.2 : अर्थव्यवस्था एवं पारिस्थितिक तन्त्र *(Coddington, 1970)*

चित्र संख्या-2.2 से स्पष्ट है कि आर्थिक गतिविधियों का फर्मों में चक्रीय सम्बन्ध पाया जाता है। आर्थिक विकास की गलत नीतियों के कारण अर्थात् पारिस्थितिक तन्त्र के अत्यधिक विदोहन के कारण पारिस्थितिक सन्तुलन निरन्तर बिगड़ता जा रहा है। आर्थिक विकास की गलत नीतियों के कारण पारिस्थितिकी तन्त्र पर आक्रमण दो प्रकार से हो रहा है :-

(अ) फर्मों एवं उपभोक्ताओं द्वारा पारिस्थितिक तन्त्र के प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन बढ़ रहा है।

(ब) फर्मों या आर्थिक गतिविधियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने से प्राप्त अवशिष्ट एवं जहरीले पदार्थों के कारण पारिस्थितिक तन्त्र प्रदूषित होता जा रहा है।

अत: मानवीय आर्थिक गतिविधियों के कारण पर्यावरण प्रदूषण एवं विदोहन (Exploration) में वृद्धि के कारण पारिस्थितिक असन्तुलन (Ecological imbalance) बढ़ता जा रहा है। क्योंकि अरबों व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थों को ध्यान में रखकर निर्णय ले रहे हैं। एक कृषक केवल कृषि फसलों का उत्पादक ही नहीं है वरन् वह अपने निवासित ऊर्जा का पर्यावरण व्यवस्थापक भी है। क्योंकि उसके द्वारा लिए गये निर्णय विस्तृत भू-भाग की पारिस्थितिक व्यवस्था को भी प्रभावित करते हैं। अत: आज आर्थिक निर्णय की प्रक्रिया में पारिस्थितिक तन्त्र को सन्तुलित बनाये रखने के पक्ष पर विचार करने का भी उत्तरदायित्व रखा जाना चाहिए।

वर्तमान में लोगों के रहन-सहन के स्तर, औद्योगिकरण एवं विशेषत: रासायनिक तकनीकी के कारण पारिस्थितिक व्यवस्था असन्तुलित ही रही है। क्योंकि इनके कारण ही पारिस्थितिकी तन्त्र के विभिन्न संसाधनों की मांग में वृद्धि होती जा रही है। अत: वर्तमान आवश्यकताओं में अर्थव्यवस्था, समाज एवं पारिस्थितिक तन्त्र के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों की निर्णायक कड़ी पर विचार करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आई. बर्टन (I. Burton) एवं **आर. डब्लू. केट्स** (R.W. Kates) ने 1965 में अपने ग्रन्थ "Readings in Resource Management and Conservation" में आर्थिक आक्रमण के सन्दर्भ में प्राकृतिक संसाधनों की व्यवस्था एवं पारिस्थितिक तन्त्र के संरक्षण की अवधारणाओं एवं पद्धतियों का विश्लेषण किया है लेकिन इन्होंने भी पारिस्थैतिक सन्तुलन में मानवीय मूल्यों को नगण्य स्थान दिया है। अत: प्राकृतिक संसाधनों एवं परिस्थितिक तन्त्र का संरक्षण मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में होना चाहिए।

(iii) अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना या बनावट (The spatial structure of the Economy)-एक महत्त्वपूर्ण समस्या अर्थव्यवस्था के स्थानिक बनावट के विश्लेषण की है। अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना से आशय अर्थव्यवस्था के वितरण या विन्यास से है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है अर्थव्यवस्था के सभी क्रियात्मक तत्त्वों के मध्य जो स्थानिक सम्बन्ध पाये जाते हैं, उन्हें ही अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना कहते हैं। सभी तत्त्व अन्योन्य क्रिया (Interaction) करने के साथ-साथ अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। अर्थव्यवस्था के विभिन्न तत्त्वों की अन्योन्य क्रिया के कारण अर्थव्यवस्था के किसी एक भाग में परिवर्तन होने पर उसकी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।

अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना के सन्दर्भ में कई सिद्धान्तों का विकास किया गया है। उदाहरण के लिए उद्योगों की स्थापना में स्थानिक संरचना पर विचार करने के सम्बन्ध में **वाल्टर क्रिस्टलर** (Walter Christaller) द्वारा 1933 में दिया गया केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त (Central Place Theory) महत्त्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त आर्थिक गतिविधियों जैसे उद्योग, कृषि आदि की स्थिति निर्धारण (Delimitation), न्यूनतम लागत एवं अधिकतम लाभ प्राप्त करने में सहायक होता है।

सामान्यत: स्थानिक वितरण में विभिन्नता होने के कारण उत्पादन एवं संसाधनों का कहीं आधिक्य है तो कहीं उन्हीं उत्पादनों की कमी पायी जाती है। इस कारण विभिन्न अंगों में माल का वितरण होता रहता है। यद्यपि कुछ अर्थव्यवस्था जैसे विश्व अर्थव्यवस्था आत्म-निर्भर होने के कारण बन्द अर्थव्यवस्थाएँ कहलाती हैं। लेकिन अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ खुली अर्थव्यवस्थाएँ होती हैं। एक साधारण चित्र द्वारा स्थानिक आर्थिक संगठन को अग्रांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। अग्रांकित चित्र संख्या 2.3 (अ) द्वारा एक पूर्णत: बंद अर्थव्यवस्था को प्रदर्शित किया गया है। चित्र संख्या 2.3 (ब) में चार खुली अर्थव्यवस्थाएँ हैं एवं 2.3 (स) में उक्त दोनों अर्थव्यवस्थाओं के मध्य की अर्थव्यवस्था को प्रदर्शित किया गया है।

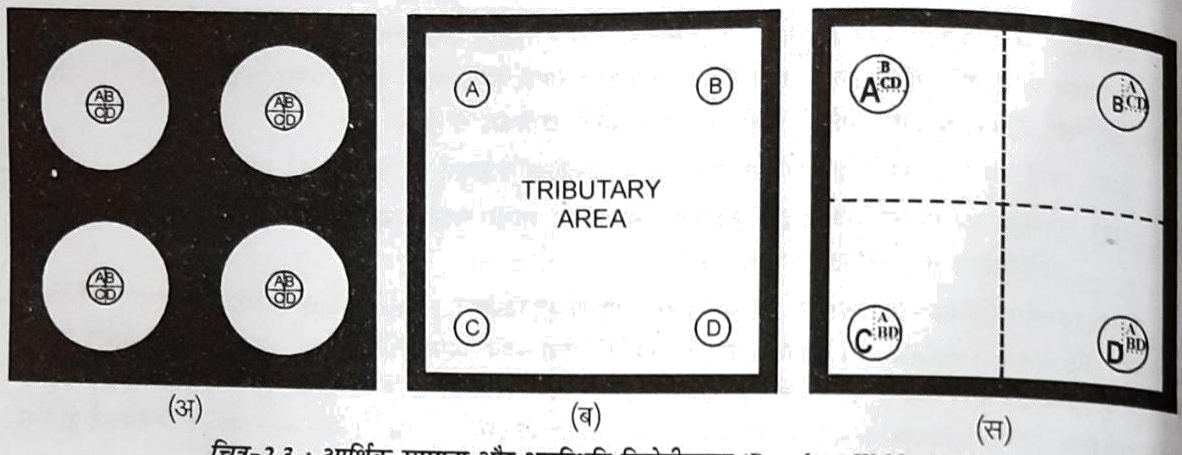

चित्र-2.3 : आर्थिक समग्रता और अवस्थिति विशेषीकरण (Based on Webb, 1959)

उपरोक्त चित्र 2.3 से स्पष्ट है कि बड़े स्तर पर अर्थव्यवस्था का स्वरूप बन्द हो सकता है लेकिन छोटे स्तर के अर्थतन्त्र का स्वरूप पूर्ण खुली व्यवस्था का होता है। शहरी केन्द्र शहर के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र से भोजन संसाधन आदि प्राप्त होने, सूचनाओं एवं विभिन्न उत्पादनों को देने के रूप में अन्योन्यक्रिया (Interaction) करते हैं।

चित्र 2.3 (अ) में एक पूर्णत: बन्द अर्थव्यवस्था है। चारों शहर या अंग पूर्णत: एकाकी (Isolated) हैं जिसमें प्रत्येक भाग आत्म निर्भर है एवं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने स्वयं के अंग में ही माल प्राप्त करता है एवं अपने क्षेत्र में ही उत्पादन का विक्रय या वितरण करता है। ये चारों ओर शहर या क्षेत्र अन्योन्य क्रिया बहुत ही कम करते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं का सर्वोत्तम उदाहरण आदिम अर्थव्यवस्थाएँ (Primitive Economis) हैं। व्यवहार में अब बन्द अर्थव्यवस्थाओं की धारणा का विशेष महत्त्व नहीं रह गया है। चित्र 2.3 (ब) में चार पूर्णत खुली अर्थव्यवस्थायें हैं। प्रत्येक शहर या अंग में किसी एक उत्पादन का विशिष्टीकरण हुआ है। यह उच्च श्रेणी की एकीकृत अर्थव्यवस्थाएँ हैं। इन विभिन्न अंगों में सेवाओं एवं माल का बड़े पैमाने पर विनिमय होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं का अन्य अंगों से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक रूप से व्यावसायिक व आर्थिक सम्बन्ध होने के कारण इन अर्थव्यवस्थाओं को प्रथम विश्व की अर्थव्यवस्थाएँ भी कहा जाता है।

चित्र 2.3 (स) में उक्त दोनों मध्य की दिशाएँ पायी जाती हैं। यहाँ भी विशेषीकरण हुआ है लेकिन पूर्णत: खुली अर्थव्यवस्था की भाँति नहीं हुआ। सभी चारों शहरों का अपने-अपने पृष्ठ प्रदेश (Hinterlands) से सम्पर्क है जिससे इनमें अन्योन्य क्रिया होती है। यह दूर की अपेक्षा समीप के क्षेत्रों में अधिक होती है। अर्थव्यवस्था की प्रकृति के निर्धारण में इन स्थानिक तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य कई, अस्थानिक तत्त्वों जैसे मानवीय उद्देश्य, मानवीय प्लांट, जनसंख्या वृद्धि आदि की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है।

भूमि उपयोग का स्थानिक संगठन (Spatial Organization of Land use)

अर्थशास्त्र में 'भूमि' शब्द से आशय प्राय: उत्पादन सम्बन्धी सभी प्रकार के प्राकृतिक साधनों एवं कच्चे माल से है लेकिन आर्थिक भूगोल में भूमि का तात्पर्य एक अंग से है और उसकी सभी विशेषताएँ जैसे- जलवायु, मृदा, धरातलीय संरचना भी इसी के साथ सम्मिलित मानी जाती हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण विश्व के विभिन्न भागों में भूमि उपयोग भी विभिन्न प्रकार का पाया जाता है। भूमि उपयोग पर सामान्यत: उसकी बाजार से दूरी, यातायात सुविधा, उत्पादन की माँग एवं पूर्ति आदि कई तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है। अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि भूमि की अवस्थिति किसी स्थान की भूमि उपयोग के स्थानिक संगठन को सर्वाधिक प्रभावित करता है।

अर्थव्यवस्था के साधारण मॉडल में चर्चा की गई है कि कृषि उत्पादकों का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। इस स्थिति में कृषक भूमि का उपयोग इस प्रकार करेंगे कि विभिन्न प्रकार की भूमि की प्रति इकाई से अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। वॉन थ्यूनेन के अनुसार अन्य सभी बातें समान हैं अर्थात् उन्होंने एक एकाकी एवं समदैशिक प्रदेश की कल्पना की है। इस दशा में भूमि की स्थिति एवं उसकी बाजार से दूरी ही भूमि उपयोग व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतया बाजार के निकट उन वस्तुओं के उत्पादन

के लिए भूमि का उपयोग किया जाता है जिन वस्तुओं के उत्पादन से बाजार से दूर स्थित भूमि पर उत्पादन की अपेक्षा अधिक तुलनात्मक लाभ या आर्थिक लगान प्राप्त है। वॉन थ्यूनेन के अनुसार बाजार के निकट शीघ्रनाशी एवं भारी वस्तुओं का निर्माण होगा एवं बाजार से दूर हल्की वस्तुओं या फिर उन वस्तुओं का उत्पादन होगा जिनसे परिवहन व्यय कम आए जो कि वर्तमान विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी कुछ सीमा तक सही प्रतीत होता है।

अर्थव्यवस्था के कार्यक्षेत्र (Sectors of Economy)

अर्थव्यवस्था के कार्यक्षेत्र में मानव की आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक अध्ययन किया जाता है ये निम्नलिखित हैं-

मनुष्य द्वारा सम्पादित क्रियाएँ जो मनुष्य अपने जीविकोपार्जन एवं आर्थिक लाभ के लिये करता है, आर्थिक क्रियाएँ कहलाती हैं। पृथ्वी तल पर संसाधन, जनसंख्या एवं तकनीकी उपलब्धि की विविधता के कारण क्षेत्रीय विविधता (Areal differentation) का जन्म होता है, जिसके कारण विश्व में विभिन्न प्रकार के आर्थिक भू-दृश्य देखने को मिलते हैं। किसी क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर ही मानवीय आर्थिक क्रिया कलापों का निर्धारण होता है। परन्तु कुछ हद तक उपलब्ध संसाधनों के उपयोग के लिये उपलब्ध जनसंख्या, उसकी तकनीकी उपलब्धी व कुछ हद तक मानव की चयन क्षमता की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि विश्व में उत्पादन, उपभोग व वितरण सम्बन्धी विविधता देखने को मिलती है।

किसी भू-भाग में प्राथमिक क्रियाओं की, कहीं द्वितीयक की तो किसी क्षेत्र में तृतीयक आर्थिक क्रियाओं की प्रधानता पायी जाती है। आर्थिक भूगोल में मानवीय आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मानव ही आर्थिक भूगोल का निर्धारण करता है। मानव द्वारा की जाने वाली उत्पादन सम्बन्धी इन आर्थिक क्रियाओं (Economic Activities) को 5 वर्गों (Classes) में विभक्त किया जा सकता है। इन्हें अर्थव्यवस्था के कार्यक्षेत्र भी कहते हैं जिनमें विभिन्न आर्थिक क्रियाओं की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है।

(i) प्राथमिक क्रियाएँ (Primary Activities)-वे समस्त मानवीय क्रियाएँ जिनके अन्तर्गत होने वाला उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से भूमि से अन्तर्सम्बन्धित होता है, वे प्राथमिक व्यवसाय कहलाते हैं। इन आर्थिक क्रियाओं का सम्बन्ध पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से है तथा उत्पादन चक्र इन्हीं क्रियाओं से प्रारम्भ होता है। पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व की 95% समयावधि में क्रियाकलाप ही जीवन निर्वाह के साधन रहे हैं। प्रकृति या भूमि से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें प्राथमिक उत्पादन भी कहते हैं। प्राथमिक व्यवसायों के अन्तर्गत मुख्य रूप से शिकार करना, मछली पकड़ना, वनीय क्षेत्रों में विभिन्न वन्य वस्तुओं का एकत्रीकरण, पशुपालन (पशुचरण), लकड़ी काटना, आदिम कृषि, खनन कार्य आदि आर्थिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान में विकासशील देशों की श्रम शक्ति का बड़ा हिस्सा प्राथमिक क्रियाओं में लगा है। नेपाल, रवाण्डा तथा नाइजर की 20% श्रमशक्ति प्राथमिक क्रियाओं में संलग्न है जबकि विकसित देशों में यह अनुपात विपरीत है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 3% व कनाडा में 5% श्रमशक्ति प्राथमिक क्रियाओं में लगी है। प्राथमिक क्रियाएँ वाले लोगों को उनकी बाहरी प्रकृति (Outdoor Nature or Thier Work) के कारण ***रेड कॉलर श्रमिक (Red Collar Worker)*** कहते हैं।

(ii) द्वितीयक क्रियाएँ (Secondary Activities)-प्राथमिक उत्पादन से प्राप्त वस्तुओं की सहायता से उनका उपयोग करके अन्य नवीन वस्तुओं के उत्पादन के लिए की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं को द्वितीयक व्यवसाय या द्वितीयक उत्पादन कहते हैं। द्वितीयक क्रियाओं में पदार्थों में परिवर्तित करके उन्हें अधिक उपयोगी व मूल्यवान बनाते हैं। ताँबा गलाना, इस्पात निर्माण, कपास के वस्त्र निर्माण आदि इसी क्रम की क्रियाएँ हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं के निर्माण में लगे उद्योग, अन्य निर्माण कार्य जैसे- गृह निर्माण, सड़क निर्माण आदि आर्थिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीयक वर्ग की क्रियाओं में संलग्न श्रमिकों को ***ब्लू कॉलर श्रम शक्ति (Blue Collar Labour Force)*** कहते हैं।

(iii) तृतीयक व्यवसाय (Tertiary Occupation)-वे आर्थिक क्रियाएँ जो प्रत्यक्ष रूप से किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त नहीं होती हैं लेकिन विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में परोक्ष रूप से सहायता प्रदान करती हैं। इनमें प्राथमिक तथा द्वितीयक क्रियाकलापों, सामान्य जनता और व्यक्तियों की की जाने वाली सेवाएँ सम्मिलित की जाती हैं। इनका उत्पादन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है। परिवहन, संचार,वाणिज्य, व्यापार, विभिन्न उच्च सेवाएँ, जैसे- शिक्षा, प्रशासन, मनोरंजन, चिकित्सा, प्रतिरक्षा आदि क्रियाएँ तृतीय व्यवसाय के अन्तर्गत आती हैं। ये उत्पादन और उपभोक्ता के मध्य महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं। तृतीयक व्यवसाय में संलग्न श्रमिकों को ***पिंक कॉलर श्रमिक (Pink Collar Workers)*** कहते हैं।

विश्व के उन भागों में जहाँ अर्द्ध शुष्क जलवायु पायी जाती है, चलवासी पशुचारण लोगों का प्रमुख व्यवसाय होता है। चलवासी पशुचारण के अन्तर्गत आदिम जाति के लोग अपने पालतू जानवरों का एक समूह रखते हैं। जहाँ भी उन्हें चराने के लिए घास उपलब्ध होती है, वहाँ पशुओं को लेकर चले जाते हैं। उस स्थान की घास खत्म होने पर अन्यत्र जहाँ घास होती है, अपने पालतू जानवरों को लेकर चले जाते हैं। अत: ये लोग चरागाहों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर हमेशा गतिशील रहते हैं। इसीलिए इसे चलवासी पशुचारण व्यवसाय कहते हैं। इन क्षेत्रों में अर्द्ध शुष्क जलवायु पायी जाने के कारण वर्षा की कमी एवं तापमान निम्न (शीतप्रदेशों में) या अति उच्च (रेगिस्तानी क्षेत्रों में) पाया जाता है जिसके कारण कृषि फसलों का उत्पादन नहीं हो सकता है। वृक्षों का इस जलवायु में पूर्णतया अभाव पाया जाता है। घास भी पर्याप्त मात्रा में नहीं उगती एवं जलवायु परिवर्तन से नष्ट हो जाती है। अर्थात् तापमान बढ़ने पर नष्ट हो जाती है। तब पशुपालक अपने पशुओं को लेकर दूसरे जलवायु घासयुक्त क्षेत्रों की ओर अपने पशु लेकर चले जाते हैं। अल्प घास क्षेत्रों की खोज के कारण इनका जीवन गतिशील या भ्रमणशील पाया जाता है। ये लोग मुख्य रूप से भेड़, बकरी, ऊँट, घोड़े, खच्चर, याक आदि जानवर पालते हैं। इनका भोजन इन जानवरों पर निर्भर रहता है। जानवरों से प्राप्त दूध, पनीर, खाल आदि बेचकर ये अपने उपभोग की आवश्यक वस्तुएँ नजदीक ग्रामीण क्षेत्रों से प्राप्त कर लेते हैं। पशुओं से प्राप्त चमड़े से ये अपने वस्त्र एवं तम्बू बना लेते हैं। अत: इनके निवास स्थान स्थायी नहीं होते। जहाँ भी घास प्राप्त होती है ये अपने तम्बू लगा लेते हैं।

(v) मछली पकड़ना (Fishing)–वर्तमान में कई क्षेत्रों में मछली पकड़ने का कार्य किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में जैसे उत्तरी ध्रुवीय व उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में भाला मारकर मछली पकड़ी जाती है तो कुछ क्षेत्रों में फन्दा डालकर एवं जाल द्वारा मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। कांगो बेसिन के पिग्मी व ध्रुवीय प्रदेश के एस्किमो लोग भाला मारकर मछलियाँ पकड़ते हैं।

विकसित देशों जैसे- जापान, ब्रिटेन, नार्वे, जर्मनी आदि देशों में मछलियाँ जाल डालकर पकड़ी जाती हैं।

(vi) प्राचीन निर्वाहक कृषि (Primitive Subsistence Farming)–उष्ण आर्द्र कटिबन्धीय क्षेत्रों में निम्न भूमि व पर्वतीय भागों में आज भी कृषि का स्वरूप परम्परागत ढंग से ही किया जाता है। इन क्षेत्रों में उच्च ताप व वर्षा के कारण यहाँ की लैटेराइट मृदा अपरदित होकर अनुपजाऊ हो जाती है। इन क्षेत्रों में सघन वन क्षेत्रों में वनों को काटकर खेत तैयार करते हैं। इन क्षेत्रों में पहली फसल अच्छी उत्पादित होती है। लेकिन तीव्र उत्पादन के कारण शीघ्र ही वह अनुपजाऊ हो जाती है। फलत: यहाँ के निवासी उस खेत को छोड़कर वनों को काटकर नया खेत तैयार करते हैं। अत: इस प्रकार की Farming में कृषि स्थायी न होकर परिवर्तनशील होती है।

इस प्रकार की कृषि का मुख्य उद्देश्य एवं कृषकों के जीवन-निर्वाह का ही होता है। प्राचीन पद्धतियाँ कुदाली से कृषि करने के कारण कुदाली वाली कृषि (Hoe Cultivation) भी कहा जाता है।

(vii) खनिज उत्खनन (Minrals Mining)–खनिज अजैव प्रक्रियाओं से उत्पादित रासायनिक तत्त्व या यौगिक (Compound) होते हैं।

खनिज मृदा में मिश्रित रूप में, कुछ खनिज भू-गर्भ में काफी गहराई में तो कुछ झीलों एवं समुद्री जल में घुलनशील रूप में पाये जाते हैं। इन खनिजों को विभिन्न रूपों में निकालना ही खनिज उत्खनन है।

वर्तमान में इस आर्थिक क्रिया की काफी महत्ता है क्योंकि इस पर समस्त निर्माण उद्योग (Manufacturing Industries) आधारित हैं। भू-पटल में लगभग 1600 प्रकार के खनिज पाये जाते हैं। इनमें से लगभग 200 खनिजों का उपयोग व्यवसायिक व औद्योगिक उपयोगों के लिये हो रहा है। सामान्यत: खनिज (Minerals) दो प्रकार के पाये जाते हैं। धात्विक (Metallic) व अधात्विक (Non-Metallic) जिनके उत्खनन को विश्व जनसंख्या के बड़े भू-भाग द्वारा आर्थिक क्रिया के रूप में अपनाया हुआ है। यद्यपि कुछ विद्वान इसे द्वितीयक आर्थिक क्रिया मानते हैं।

2. द्वितीयक या गौण आर्थिक क्रियायें (Secondary Economic Activities)

द्वितीयक आर्थिक क्रिया द्वारा प्राथमिक उत्पादकों से प्राप्त कच्चे माल (Raw material) का रूप परिवर्तित करके अधिक उपयोगी व उपभोग योग्य बनाया जाता है जिससे उनके मूल्य में वृद्धि हो जाती है। द्वितीयक आर्थिक क्रियाओं को गौण आर्थिक क्रियायें कहा जाता है। ये विनिर्माण उद्योगों को जन्म देती हैं। ये विकसित उद्योग हैं जिनमें मानव न केवल जीवन-निर्वाह करता है वरन् समाज को भी योगदान देता है। द्वितीयक आर्थिक क्रियाओं में विनिर्माण उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है।

(i) विनिर्माण उद्योग (Manufacturing Industries)–प्राथमिक उत्पादकों से प्राप्त कच्ची सामग्री (raw materials) को शारीरिक या यान्त्रिक शक्ति द्वारा किसी इच्छित रूप, आकार या विशेष गुणों वाली वस्तु में परिवर्तित करना विनिर्माण उद्योग

1. प्राथमिक क्रियाएँ (Primary Activities)

मानव की प्रारम्भिक आर्थिक गतिविधियाँ प्राथमिक क्रियाकलापों के रूप में विकसित हुई हैं। प्रारम्भ में मानव अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न स्थानों पर घूमकर पूरा करता था। भोजन एकत्र करता था तथा वन्य जीवों का शिकार करता था। उस समय प्रकृति उदार रही लेकिन धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ती गई। मनुष्य ने लम्बे एवं सुरक्षित जीवन के लिए खाद्य उत्पादन की आश्यकता का अनुभव किया। इस प्रकार पृथ्वी पर मानव अपने अस्तित्व के 95% समय में प्राथमिक क्रियाकलाप पर जीवन निर्वाह करता रहा है। प्रमुख प्राथमिक क्रियाएँ निम्नलिखित हैं-

(i) भोजन एकत्रीकरण (Food Gathering)
(ii) आखेट (Hunting)
(iii) लकड़ी काटना (Lumbering)
(iv) पशुचारण (Pastoralism)
(v) मछली पकड़ना (Fishing)
(vi) प्राचीन निर्वाहक कृषि (Primitive Subsistence Farming)

(i) भोजन एकत्रीकरण (Food Gathering)-भोजन एकत्रण करने का व्यवसाय प्रमुख रूप से निर्जन वनीय क्षेत्रों में रहने वाली आदिम जनजातियों में पाया जाता है। विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाले आदिम जाति के लोग किसी भी वस्तु विशेष का उत्पादन नहीं करते हैं। ये लोग अपने जीवन-निर्वाह हेतु वनीय क्षेत्र की विभिन्न वस्तुओं के एकत्रीकरण पर आश्रित होते हैं। भूमध्यरेखीय क्षेत्र में तीव्र वर्षा एवं उच्च तापमान के कारण सघन, लम्बे एवं घने वनीय क्षेत्र में यह कार्य सर्वाधिक प्रचलित है। यहाँ निवास करने वाले लोग वनीय क्षेत्रों में घूमकर फल, फूल, कन्दमूल तथा शहद आदि उपयोगी वस्तुएँ एकत्रित करते हैं। विश्व में भोजन एकत्रित करने का व्यवसाय अधिकतर कांगो बेसिन एवं गिनी तट (अफ्रीका), अमेजन बेसिन (दक्षिण अमेरिका), मलेशिया (सेमांग, सकाई) एवं अन्य दक्षिणी-पूर्वी एशियाई तथा भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में पाया जाता है। वनीय क्षेत्रों में वन उपजों को एकत्रित करने के अतिरिक्त जंगली जानवरों का शिकार करना, मछली पकड़ना आदि कार्य भी किये जाते हैं। पिग्मी, संमांग, सकाई आदि जनजातियाँ इस व्यवसाय में लगी रहती हैं। दक्षिणी अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थलीय क्षेत्र में रहने वाले अधिकतर बुशमैन जनजाति के लोगों की अर्थव्यवस्था भोजन एकत्रित करने के व्यवसाय पर ही निर्भर पायी जाती है।

(ii) आखेट (Hunting)-विश्व के उन भागों में जहाँ कृषि व्यवसाय हेतु उपयुक्त सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। वहाँ के लोग अपना जीवन निर्वाह विभिन्न जानवरों के शिकार एवं मछली पकड़कर व्यतीत करते हैं। ये लोग अधिकतर घुमक्कड़ जीवन बिताते हैं तथा जहाँ शिकार हेतु प्रयुक्त जानवर पाये जाते हैं, वहाँ अपने डेरे लगा लेते हैं। लाइकेन, काई आदि को खाने आते हैं। उनका शिकार एस्किमो लोग अपने भोजन के लिए करते हैं। वर्ष भर बर्फ जमे रहने के कारण यहाँ शिकार के अलावा अन्य कोई व्यवसाय करना सम्भव नहीं है।

(iii) लकड़ी काटना (Lumbering)-ऊष्ण कटिबन्धीय एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय वनीय क्षेत्रों में जहाँ पेड़-पौधे प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, वहाँ निवास करने वाले लोगों का प्रमुख व्यवसाय लकड़ी काटना, चीरना, लट्ठे तैयार करना आदि होता है। वनीय क्षेत्रों में कठोर एवं मुलायम दोनों प्रकार की लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं जिनका गुण के आधार पर उपयोग किया जाता है। अधिकतर भूमध्यरेखीय वनीय क्षेत्र की लकड़ियाँ कठोर पायी जाती हैं। अत: इनका उपयोग भवन निर्माण, फर्नीचर, बनाने, खम्भे एवं रेल की पटरियों के स्लीपर बनाने, रेल के डिब्बे, बॉक्स आदि में किया जाता है। शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में टेगा वनस्पति पायी जाती है। यहाँ के वन मुलायम एवं गुद्देदार पाये जाते हैं। अत: इनका उपयोग अधिकतर कागज की लुगदी बनाने में किया जाता है। कागज की लुगदी के अतिरिक्त माचिस की तीलियाँ, रेशम निर्माण, प्लास्टिक आदि के निर्माण में टेगा वनों का उपयोग किया जाता है।

लकड़ी काटने का व्यवसाय कटिबन्धीय क्षेत्रों में आदिम जातियों के द्वारा जीवन निर्वाह हेतु एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में उन्नत तकनीकी साधनों के उपयोग द्वारा नवीन मशीनों की सहायता से किया जाता है। अत: आदिम तरीके से लकड़ी काटना, उनको ईंधन की आवश्यकता हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में बेचना, लकड़ियों के बदले अपने भोजन हेतु अनाज प्राप्त करना आदि क्रियाएँ ऊष्ण कटिबन्धीय वनीय क्षेत्र की जातियों द्वारा किया जाता है।

(iv) पशुचारण (Pastoralism)-प्रारम्भिक अवस्था में मानव आखेट व संग्रहकर्त्ता रहा लेकिन धीरे-धीरे जीव-जन्तुओं को पालतू बनाने लगा। पालतू जीव अनेक रूपों में उपयोगी सिद्ध हुए फलस्वरूप मनुष्य ने विविध जलवायु दशाओं के अनुसार उपयोगी पशुओं का चयन कर पालतू बनाया। प्रारम्भ में गोपशु (घास क्षेत्रों में), रेंडियर, ऊँट, लामा तथा अल्पाका (एण्डीज पर्वत) याक (हिमालय), घोड़ा, भैंस, भेड़, बकरियाँ आदि को पालना प्रारम्भ किया। वर्तमान में शीतोष्ण तथा उष्ण कटिबन्धीय घास क्षेत्रों में पशुपालन किया जाता है। यह पशु पालन चलवासी पशुचारण (Nomadic Herding) होता है।

कहलाता है। इसमें साधारण वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तन, हाथ से बने जूते बनाना आदि के निर्माण से लेकर बड़ी-बड़ी मशीनरी, रेलवे इन्जन, जहाज आदि सभी के निर्माण को सम्मिलित किया जाता है। अर्थात् विनिर्माण उद्योगों में कुटीर उद्योगों, लघु, वृहत पैमाने के उद्योग सभी को सम्मिलित किया जाता है। इस आर्थिक क्रिया में विकसित देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, प. यूरोपीय देश, द. कोरिया की आधी से अधिक जनसंख्या संलग्न है। विकासशील देशों में भी जनसंख्या का बड़ा भाग इसमें लगा है।

(ii) उन्नत या आधुनिक कृषि (Modern Agriculture)-द्वितीयक आर्थिक क्रियाओं में उन्नत कृषि क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान में कृषि उत्पादकता में वृद्धि हेतु कृषि में यन्त्रीकरण, उन्नत बीजों, रासायनिक खादों आदि का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इस कृषि का मुख्य उद्देश्य व्यापारिक होता है। उदाहरणार्थ रोपण कृषि (Plantation Agriculture), भूमध्य सागरीय कृषि, व्यापारिक अन्नोत्पादक कृषि आदि उन्नत कृषि के प्रकार हैं। इस प्रकार की कृषि से विश्व अर्थव्यवस्था की प्रगति में वृद्धि हुयी है।

3. तृतीयक आर्थिक क्रियायें (Tertiary Economic Activities)

ये आर्थिक क्रियायें उच्च श्रेणी की हैं। इन आर्थिक क्रियाओं के संसाधन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आर्थिक क्रियाओं के आधार की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् तृतीय उत्पादकों से सम्बन्धित आर्थिक क्रियाओं में प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादन से प्राप्त वस्तुओं को उपभोक्ताओं, व्यापारियों व उद्योगपतियों तक पहुँचाया जाता है। इन क्रियाओं में परिवहन (Transportation), संचार (Communication), वितरण (Exchange) एवं विनिमय (Distribution) संस्थाओं एवं लोगों (व्यापारिक, सरकारी, गैर सरकारी कर्मचारी व दलाल) की सेवाओं (Services) को सम्मिलित किया जाता है।

(i) परिवहन व संचार (Transportation and Communication)-विश्व में विनिमय पर आधारित वर्तमान आर्थिक क्रियाओं में परिवहन व संचार सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर उत्पादन उस क्षेत्र विशेष में परिवहन व संचार साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। इस आर्थिक क्रिया के विकास से प्रादेशिक असमानता में निरन्तर कमी आ रही है एवं विभिन्न प्रदेशों की अन्त:निर्भरता बढ़ती जा रही है। अत: विश्व की कार्यशील जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा इस आर्थिक क्रिया में संलग्न है।

(ii) व्यापार (Trade)-विश्व का कोई भी प्रदेश पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं रह सकता क्योंकि किसी क्षेत्र में कुछ संसाधनों व वस्तुओं की अधिकता होती है तो दूसरे क्षेत्र में उसकी कमी व अन्य वस्तुओं की अधिकता।

व्यापार ही एक ऐसा माध्यम है जो प्रकृति द्वारा उपहार स्वरूप प्रदत्त संसाधनों की विषमता को बांटकर सम्पूर्ण विश्व में मानव-जीवन स्तर में समानता लाने में सक्षम है। यह आर्थिक क्रिया विशेषत: बड़े नगरों में विकसित अवस्था में पायी जाती है।

(iii) सेवायें (Services)-इस आर्थिक क्रिया में बैंक व बीमा कर्मचारियों की सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है। ये उच्च कोटि की आर्थिक क्रियायें हैं। तृतीयक क्रियाओं में मात्र प्रत्यक्ष सेवाओं को ही सम्मिलित किया जाता है।

4. चतुर्थक आर्थिक क्रियायें (Quaternary Economic Activities)

सामान्यत: आर्थिक क्रियाओं को तीन खण्डों प्राथमिक क्रियायें, द्वितीयक क्रियायें व तृतीयक क्रियाओं में विभाजित किया जाता है। परन्तु जीन गाहमैन ने अप्रत्यक्ष सेवाओं (Indirect Services) को चतुर्थक आर्थिक क्रियायें कहा है। इनमें प्रशासन, चिकित्सा, शिक्षण, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान (Research) आदि कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। अत: इन आर्थिक क्रियाओं के माध्यम से ही अन्य क्रियायें सुचारू रूप से क्रियाशील होती हैं। आर्थिक क्रियाओं के कार्यात्मक वर्गीकरण (Functional classification of economic activities) से स्पष्ट है कि आर्थिक भूगोल, मानवीय आर्थिक क्रियाओं एवं जीविकोपार्जन की विधियों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर मिलने वाली समानता व विषमता का अध्ययन करता है। आर्थिक भूगोल हमें यह भी बताता है कि मानव ने अपने लाभ के लिये कौन से संसाधन का कैसे उपयोग किया है।

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि आर्थिक भूगोल का मुख्य उद्देश्य किसी क्षेत्रीय इकाई में आर्थिक क्रियाओं के विभिन्न पक्षों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों से उत्पन्न भू-दृश्य (Economic landscape) का विश्लेषण व व्याख्या करना है। ❑

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.